

दिनचर्या



संग्राहक
परम-शु का दीन दास
विमल

प्रकाशक :

विद्युत् रंजन चक्रवर्ती

विवेक-वितान

सत्संग, देवघर, बिहार ।

द्वितीय प्रकाश :

३० भाद्र १४०३ बं०

मुद्रक :

धीरा प्रिन्टर्स, देवघर ।

दक्षिणा—३-००

द्वितीय संस्करण के सम्बन्ध में दो शब्द

दिनचर्या का प्रथम प्रकाश अपनी नाना-विध त्रुटि-विच्युति के साथ ३० भाद्र, १४०१ बंगाब्द को प्रेमी पाठकों के सामने आया था । कुछ प्रेमी पाठकों के अभिमत भी आये और सहर्ष उनका स्वागत किया गया । तदनुसार संशोधन एवं परिवर्द्धन के साथ पुनः इसका दूसरा संस्करण आपके समक्ष है । आशा है इस संस्करण भी प्रेमी पाठकों के निकट समान आदरणीय हो सकेगा ।

विनीत

प्रकाशक

“भगवान सभी के लिये समान हैं—

प्रत्येक के अपने वैशिष्ट्य के अनुसार,

वे प्रत्येक के लिए दयालु हैं—

उनकी ओर जितना अग्रसर होओगे,—

उनकी दया तुम उतना ही पाओगे,—

प्रवृत्ति की प्रेरणावश उनसे दूर जाने से—

वे तुम से दूर ही रहेंगे ;

उनके विधान के रास्ते पर अग्रसर होओ,—

तुम सभी उन्हें प्राप्त करो—

उनका उपभोग करो।”

—श्रीश्रीठाकुर अनुकूलचन्द्र

दिनचर्या

अधिकांश मानव जीवन का मूल उद्देश्य क्या है, इसे नहीं जानता है। इसलिये उनका जीवन लक्ष्यहीन होकर दुःख-दारिद्र्य, अज्ञान्ति से निष्कल और निरर्थक हो जाता है। जीवन के गन्तव्य की अज्ञानता के कारण दिग्भ्रान्त मानव निरर्थक भटकता रहता है। युगपुरुषोत्तम श्रीश्रीठाकुर अनुकूलचन्द्रजी ने हम मनुष्यों का गन्तव्य क्या है, उसे निम्नलिखित वाणी में स्पष्ट किया है और गन्तव्य तक पहुँचने की सही दिशा भी निर्देशित किया है—

आमादेर गन्तव्य ह'ल ईश्वर प्राप्ति

धारण-पालनी-सम्भेग-सिद्ध व्यक्तित्व

तार उपाय हृष्ये

आचार्य सकिय अनुरक्ति

ता'र धेके आसे—

आत्म-नियन्त्रण,

परिवार-नियन्त्रण,

समाज-नियन्त्रण,

राष्ट्र-नियन्त्रण,

आर, एइ राष्ट्र-नियन्त्रणेर भीतर दिखे

सारा विश्वेर संगे योगसूत्र रचना करे

सबटा निये

विवर्द्धनेर दिके एगिये चला,

आर, एइ सबगुलिके सार्थक करे तोला -
ईश्वरे ;

आर, प्राप्तिर परम वेदना एइ-इ ॥

(आदर्श-विनायक)

भावार्थ—हमारे जीवन का परम लक्ष्य है—
ईश्वर प्राप्ति ; ईश्वर प्राप्ति का अर्थ है—धारण-
पालनी-सम्बेग-सिद्ध व्यक्तित्व अर्थात् ऐसे व्यक्तित्व
की प्राप्ति जो हमारी व्यक्तिगत और समष्टिगत
रूप से सत्ता (अस्तित्व) को धारण कर सके,
पालन कर सके । इसका एकमात्र उपाय है,—

आचार्य में सक्रिय अनुरक्ति, उसी से आती है,—
आत्म-नियन्त्रण, परिवार-नियन्त्रण, समाज-नियन्त्रण,
राष्ट्र-नियन्त्रण ; और राष्ट्र-नियन्त्रण के माध्यम से
अखिल विश्व के साथ योग सूत्र रचना करके,
सबकुछ साथ लेते हुए विवर्द्धन की ओर आगे
चलना ; और इन सबकुछ को एक ईश्वर में सार्थक
कर डालना ; और प्राप्ति का परम ज्ञान ही यही है ।

श्रीश्रीठाकुरजी की उपयुक्त वाणी पर
ध्यान देने से यह पता चलता है कि मानव
जीवन प्राप्त करने पर सर्वप्रथम सद्यः जीवन-
दाता—माता-पिता के प्रति सश्रद्ध अनुराग
और भक्ति का अवलम्बन कर सबके जीवन
के उत्स,—परमपुरुष जिन्हें हम आचार्य या
इष्ट-आदर्श के रूप में जान पाते हैं,—उनके
प्रति श्रद्धा-सम्पन्न होकर उन्हें ग्रहण करना,
उन्हीं के अनुशासन में चलना,—उन्हें अपना
लेना, यही जीवों का एकमात्र पथ है,—‘तात्पर्यः
पन्था विद्यते ह्ययनाय’ ।

वह प्राणी भाग्यशाली है जिसका जन्म

उस अवधि में होता है जब परमप्रभु रक्त-मांस-संकुल मूर्त कलेवर धारण कर इस धराधाम पर रहते हैं। ऐसे समय में मनुष्य सहज हो उन्हें अपना इष्ट-गुरु बनाकर, निर्वन्द होकर पूर्णविश्वास और निष्ठा के साथ उनका अनुगमन कर सकता है और अपने जीवन को पूर्णसार्थक एवं सफल बना सकता है। किन्तु उनके अन्तर्धान काल में—

‘तिनि चले गेले पुरुषोत्तम अनुगामी ऋत्तिकेर काछे थेके पुरुषोत्तम प्रवर्तित दीक्षाय दीक्षित हुंये ओइ पुरुषोत्तमेरइ अनुसरण करवे, ओइ पुरुषोत्तमकेइ ध्यान करवे, यावत् पुनराय तार आविभवि ना हय। परवर्ती आसले आबार तांके ग्रहण करवे कारण, तिनि पूर्ववर्तीरइ नव-कलेवर’। (आलोचना प्रसंगे २५, पृ० २६४)

इस प्रकार अधुनातन पुरुषोत्तम की दीक्षा लेकर,—उनसे युक्त होकर, उनके अनुशासन में चलना ही जीवन का परम लक्ष्य,—“ईश्वर-प्राप्ति” का एकमात्र पथ है।

दीक्षोपराप्त दैनन्दिन जीवन में यजन, याजन, इष्टभृति को अपरिहार्य रूप से समय पर नियमित ढंग से सम्पादित करने के साथ-साथ जागतिक कार्यों का सम्पादन भी उनकी प्रीति के लिये समझते हुए करते चलना है। व्यतिक्रम होने से दीक्षा नहीं बचेगी और परम गुरु से सम्बन्ध ढीला पड़ जायगा, तब हमारे जीवन में दुष्ट प्रवृत्तियों का आक्रमण होगा जो सद्गुण को नष्ट करके जीवन में दुर्गुण का राज्य संस्थापित कर देगा और तब हम मानव से दानव बन जायेंगे।

अनेक लोग दीक्षा लेना मात्र ही यथेष्ट समझते हैं और नियमों का पालन ठीक से नहीं करते। ऐसे लोगों के लिये ही श्रीश्रीठाकुरजी की वाणी है।

गुरुर काछे दीक्षा नये

भावछो मने सबइ हलो

ता नय किन्तु ता’ तो नयइ

निष्ठा सह यदि ना पालो ॥

और भी,—

दीक्षा निये जानिस मने

इष्टभृति करतेइ ह'य,

इष्टभृति बिहीन दीक्षा

कभु किरै चेतन रय ?

भावार्थ—गुरु के निकट दीक्षा लेकर यदि ऐसा सोचते हो कि यही सबकुछ हो गया तो ऐसा मत सोचो क्योंकि निष्ठापूर्वक यदि उसके नियमों का पालन नहीं करते हो तो उससे कोई लाभ नहीं।

दीक्षा लेने के साथ ही समझ लो कि इष्टभृति करना ही है क्योंकि इष्टभृति के बिना दीक्षा जाग्रत (जीवन्त) नहीं रह सकती है।

अतः स्पष्ट है कि जीवन धारण करने पर इष्ट-गुरु की दीक्षा अनिवार्य है और तदुपरान्त दिन-रात-आचरण में नियमों का पालन भी अनिवार्य ही है। इस प्रकार बिछावन छोड़ने से लेकर पुनः रात्रि में बिछावन पर जाने समय तक अपने जीवन को सद्गुरु के

आदेशानुसार संचालित करना ही विधि अनुकूल है। इस क्रम में विधान है :—

ऊपा निशाय मन्त्र-साधन,

चलाफेराय जप,

यथासमय इष्टनिदेश

मूर्त कराइ तप।

(अनु० १। पृ० ४०३।२७।)

भावार्थ—ऊपाकाल (सूर्योदय के पूर्व) और निशा-काल (रात्रिवेला) में नाम-ध्यान करना आवश्यक है और चलते-फिरते नाम जप का अभ्यास करते हुए दैनन्दिन जीवन में समय पर इष्टनिदेश को चान्तवाचित करते चलना ही तपस्या है।

प्रतिदिन रात्रि के शेष बेला, ३ वजे तक जगकर शरीर और मन को आलसमुक्त करके मुखासन लगाकर अनुराग के साथ दीक्षा के समय निर्देशित विधि से इष्ट-चिन्तन करते हुए नाम-जप करना चाहिये। यह काम सामान्यतः दो घण्टे और अधिकतर जितनी

देर तक हो सके उतना ही लाभदायक है।

जप-ध्यान के समय खयाल रखना है कि—

इष्टपदे दान ना हुले

जप करिस् बा कि ?

जनसभोर करलेओ जप

लाभ हवे फांकि । (अनु० १, पृ०-४०३)

अर्थात् इष्ट के प्रति अच्युत अनुराग के साथ जप-ध्यान करना चाहिये अन्यथा जप-ध्यान से कोई लाभ नहीं है।

इस प्रकार जप-ध्यान के पश्चात् 'स्वतः अनुज्ञा' को पूर्ण अर्थबोध के साथ आकुलभाव से पाठ करके इष्टभृति करना चाहिये। इस क्रम में श्रीधोठाकुरजी की बाणी है—

अरुण ऊपार आगेइ करिस्

रात्रि-शय्या सकल त्याग,

ओइ रागेरइ अनुरागे

करिस् इष्टभृतिर याग ॥

(अनु० २ खण्ड, पृ० ४०।६)

दीक्षा ग्रहण करने के दिन से ही शुरु करके आजीवन प्रतिदिन सूर्योदय के पूर्व ही अति ऊषाकाल में ही जप-ध्यान के उपरान्त, स्वयं कुछ भी आहार लेने के पूर्व ही, मन को सभी प्रकार के शर्त और कामना से मुक्त करके इष्टदेवता के भरण-पोषण की आप्रह-उद्दीप्त भावना के साथ तीनबार इष्टभृति मन्त्र पाठ करके इष्टभृति अर्घ्य निवेदन करना है और इस अर्घ्य को इस प्रकार जमा रखना है कि किसी अवस्था में यह अर्घ्य खर्च या नष्ट नहीं होने पावे। प्रत्येक दिन इस प्रकार से निवेदित अर्घ्य की दीक्षा लेने के दिन से ३० दिनों तक जमा करके ३०वाँ दिन दक्षिणा और संगठनी के साथ इष्ट के निकट उसकी प्रीति के लिये स्वयं ही जाकर निवेदन कर देना है। जहाँ स्वयं उपस्थित होना सम्भव नहीं है वहाँ स्वयं जाकर निवेदन करने के पवित्र मनोभाव के साथ डाकघर के द्वारा

स्वयं भोजना ही लक्ष्मीचीन है—जिससे इष्ट के निकट पहुँचने का रसीद मिल जाय। यह डाक रसीद जब हाथ में आ जाता है तभी वह निवेदन सार्थक ही उठता है। इसमें किसी प्रकार का व्यतिक्रम, व्यत्यय या अस्पष्टता नहीं करना है। यह उनके निकट उनके निर्देशानुसार ही पहुँचाना है। इसका व्यय भी उनके इच्छाधीन है।

इष्टभृति भेजने के उपरान्त इसीदिन २ गुत्तभाई या गुश्जन को स्वतःस्वेच्छाभाव से भूतभोज्य के रूप में दो भोज्य देना है एवं उपयुक्त आपदग्रस्त परिजन तथा बृहत्तर परिवेश की सेवा के लिये भूतभोज्य के रूप में कुछ देना है। ऐसा करते चलने से ही इष्टभृति पूर्ण और त्रुटिहीन होता है।

अशौचावस्था में इष्टार्घ्य (इष्टभृति एवं स्वस्त्ययनी आदि के अर्घ्य) की निवेदन विधि—

जो व्यक्ति वास्तविक रूप में सन्यासी अथवा ब्राह्मण है उनके जीवन में शौचाशौच

का प्रश्न ही नहीं आता है। सामाजिक जीवनकार में विभिन्न सभाज में विभिन्न प्रकार के अनुष्ठानों की प्रथाएँ चल रही हैं, उनमें अनेक उत्सव एवं व्यसन के अवसर और समस्या उपस्थित होते रहते हैं और उक्त अवसर पर उनकी समस्याओं के निदान की भी व्यवस्था रखी गयी है।

आर्य-कृषियों ने समाज में दो प्रकार की नैतिक अवस्थायें रखी हैं—एक है हर्ष की अवस्था और दूसरी है विषाद की अवस्था। आनन्द की अवस्था में जन्म से लेकर मरणावस्था तक दशविध संस्कार के साथ-साथ जन्मोत्सव और उसका वर्षगांठ, मुण्डन, उपनयन, विवाह और पूजा-पाठ आदि के अनेक प्रकार के अनुष्ठानों की व्यवस्था है। इन अवसरों पर योग हर्षोत्साह के साथ अपनी क्षमता के अनुसार धूमधाम से स्वजनमित्रों तथा अतिथियों को भोजन कराते और दक्षिणादि

में व्यय करते हैं। इन अवसरों पर लोग प्रेम तथा श्रद्धा के साथ इष्टार्थ भी समर्पित करते हैं।

जीवन में हर्ष-विषाद और सुख-दुःख लगा ही रहता है तथा चक्र की भाँति एक के बाद दूसरा सामने आता ही रहता है। विषाद के अवसरों में भी कुछ ऐसे अवसर हैं जब लोग दुःख के साथ-साथ हर्ष भी मनाते हैं तथा हर्ष के कुछ अवसर पर अशौच का भी अनुष्ठान करते हैं। किसी परिवार-समाज में बच्चों के जन्म के समय - नवीन आत्माओं के मिलन के समय लोग हर्षान्वित होते हैं, उनका स्वागत करते हैं किन्तु साथ-साथ एक निश्चित अवधि तक किसी भी प्रकार के पवित्रानुष्ठान अर्थात् देव-पूजा आदि को वर्जित रखते हैं क्योंकि इस काल को लोग अशौचावधि मानते हैं। इस अवधि के अन्त में लोग पुरोहित द्वारा निश्चित कर्मकाण्ड के विधि-अनुकूल श्रान्तुष्ठान सम्पन्न

कराकर उन्हें भोजन तथा दक्षिणादि से सन्तुष्ट करने के उपरान्त ही सामान्य शौचावस्था को प्राप्त करके सामान्य जीवन व्यतीत करने लगते हैं। भिन्न-भिन्न समाज के विभिन्न वर्ण एवं वर्ग के मध्य इस अशौचावधि में भी भिन्नता है—कहीं लोग ६ दिन, कहीं १२ दिन और कहीं २० दिन तक अशौच का पालन करते हैं। इस अवधि में किसी प्रकार का पवित्र-कार्य या इष्ट-कार्य करना भिक्ख माना गया है।

दूसरा अवसर विषाद का है जब परिवार-समाज से किसी आत्मा (व्यक्ति) का विछुड़न होता है, यानी किसी की मृत्यु होती है। यह भी अशौच का अवसर माना जाता है और इस अवसर पर भी सामान्य जीवन का सारा पवित्रकार्य एवं देवकर्म स्थगित ही रहता है। विभिन्न समाज के विभिन्न वर्ण तथा वर्ग में इसके संस्कार तथा इसकी अवधि में भी भिन्नता है। सामान्यतः कहीं १२ दिन,

कहीं १३ दिन, कहीं १५ दिन तथा कहीं ३० दिन लोग अशौच का पालन करते हैं। इस अशौचकाल में भी कर्त्तलोग पतित एवं अपावन व्यक्तियों के सम्पर्क से दूर ही रहकर दिवंगत आत्मा के प्रति श्रद्धार्घ्य समर्पित करते हैं। इस अवधि के अन्त में अपने सामाजिक प्रचलन के अनुरूप लोग कर्मकाण्ड की विधि-व्यवस्था के अनुसार क्रमशः क्षौर-क्रिया तथा नियमित यज्ञानुष्ठान की व्यवस्था करते और अपने पुरोहित द्वारा विधि-विधान के अनुरूप कार्य सम्पन्न कराकर उन्हें भोजन तथा दक्षिणा से सम्बुष्ट करने के उपरान्त ही पवित्रावस्था में पदार्पण करते एवं सामान्य जीवनयापन करने लगते हैं।

जब किसी परिवार में नवजात-शिशु अथवा अल्पवयस्क अग्रौढ़ व्यक्ति की मृत्यु होती है जिसे अकाल मृत्यु की संज्ञा दी गयी है, उस समय लोग विषादग्रस्त होकर अशौच का

पालन करते हैं। दूसरी ओर जब किसी अति-वृद्ध, जर्जर या असाध्य रोग-ग्रस्त व्यक्ति की मृत्यु होती है उस समय लोग हर्षपूर्वक अशौच का पालन करते हैं। दोनों स्थिति में निश्चित अवधि के अन्त में निश्चित यज्ञानुष्ठान के उपरान्त ही शौचावस्था को प्राप्त होते हैं।

उपयुक्त अशौचावस्था में इष्टार्घ्य (इष्ट-भृति स्वस्थयनी आदि) के निष्पादन तथा इष्ट-कार्य के सम्पादन की सामान्य विधि में भी विकृति आ जाती है। अपवित्रावस्था में इष्ट-कार्य तथा शुभ यज्ञानुष्ठान आदि करना वर्जित है। अतः ऐसे अवसर पर निकटस्थ परमोन्मीय सुनिष्ठ इष्ट-भ्राता के माध्यम से अपने इष्ट को इष्टार्घ्य—इष्टभृति, स्वस्थयनी आदि का अर्घ्य समर्पित करना चाहिये। यदि निकट में कोई ऐसे परमोन्मीय इष्ट-प्राणबन्धु नहीं हैं तो प्रतिदिन इष्टार्घ्य की राशि दिना मन्त्रपूत किये ही अलग रखनी चाहिये और

शौचावस्था प्राप्त करते ही प्रीति और श्रद्धापूर्वक पूर्णमनोयोग के साथ इष्टार्घ्य की राशि प्रतिदिन का अलग-अलग या कुलराशि एक साथ ही जल से प्रक्षालित करके इष्ट को समर्पित करनी चाहिये। इसके साथ ही इष्ट-प्रणामी भी समर्पित करनी चाहिये। तदुपरान्त पूर्व सामान्य शौचावस्था की भाँति ही इष्ट के लिये नियमित इष्टार्घ्य समर्पित करने का विधान है। विहित समय पर अर्घ्य तीसवाँ दिन संगठनी, दक्षिणा, ऋत्विक्की और प्रणामी के अर्घ्य के साथ कुल जमा इष्टार्घ्य को इष्ट के निकट या इष्ट निदेशानुसार उपयुक्त व्यक्ति के निकट इष्टार्घ्य भेज देना चाहिए।

यदि इष्ट या इनके अवर्तमान काल में इनके द्वारा निर्दिष्ट गुणयुक्त उपयुक्त व्यक्ति निकट में हैं तो स्वयं उनके पास इष्टार्घ्य जमाकर देना है। यदि दूर हैं तो स्वयं डाकघर जाकर धनादेश (Money order) के

द्वारा उक्त राशि भेजकर रसीद लेकर ही निश्चित होंगे। यदि अर्घ्यीचादि के अन्दर ही इष्टार्घ्य भेजने का निर्दिष्ट समय उपस्थित हो जाय तो शौचावस्था प्राप्त होते ही तत्क्षण सर्वप्रथम इष्टार्घ्य भेज देना ही समीचीन है।

प्रत्येक दिन इष्टभृति निवेदन के उपरान्त दैनन्दिन प्रातःक्रिया से निवृत्त होकर इष्टपूजा-प्रार्थना समाप्त करके खालीपेट (जनाहार-मुख) थानकुनी (ब्राह्मी) की १ पत्ती डंठल सहित चबाकर थोड़ा जल पी लें। इसके अभाव में श्याम तुलसी की कुछ पत्तियों से भी काम ले सकते हैं। इसके थोड़ी देर बाद २ नीमपत्ती चबाकर एक ग्लास जल पी लेना लाभदायक है।

छः बजे सुबह तक यह काम सम्पन्न हो जाना चाहिये। तदुपरान्त किसी व्यक्ति से मिलते ही सर्वप्रथम सद्गुरु की चर्चा (याजन) अवश्य करना है। साथ-साथ पड़ोसियों के

कुशलता की जिज्ञासा करते हुए उनकी आवश्यक सेवा करना भी कर्त्तव्य है।

जलपान-भोजन के १५ मिनट पूर्व या इसके दो घण्टे के बाद सुविधानुसार दिन में ३-४ बार श्वासन (मृत्युञ्जय आसन) अवश्य किया जाय। इससे शारीरिक उत्तेजना और थकावट दूर हो जाती है एवं शरीर को स्निग्धता तथा सुदृम्भा को शक्ति मिलती है। साथ ही मस्तिष्क-क्षमता में वृद्धि होती है। पेट की गड़बड़ी दूर होती है तथा शरीर का सारा अवयव सबल होता है। इस आसन से शरीर का रक्तचाप भी नियन्त्रित होता है।

आवश्यकतानुसार जलपानादि के उपरान्त अपने पारिवारिक विकास-सम्बन्धी कार्य-सम्पादन के क्रम में ऐसा ध्यान रहे कि परिवेश तथा समाज के विकास में किसी प्रकार की क्षति नहीं होने पावे। जीविका-सम्बन्धी या अन्य किसी प्रकार के शारीरिक

काम करते समय ताम-जप भी चलते रहना लाभदायक है। मन, मुख या क्रिया द्वारा कभी किसी को किसी प्रकार का कष्ट नहीं पहुँचाता चाहिये।

अपने परिवार परिवेश में या अन्यत्र हर समय सम्भूतात्मक दूरत्व की रक्षा करते हुए निष्ठाचार का पालन करना चाहिये। अपने शरीर व मन के प्रति भी आवश्यकता से अधिक समता नहीं रखनी चाहिये। अधिक समता से मन शरीरमुखी और वृत्तिपरायण हो जाता है और मानसिक तथा आध्यात्मिक विकास गतिरुद्ध हो जाता है। परिणामतः मन संकीर्ण होकर पतनोन्मुख हो जाता है।

प्रत्येक कार्य-सम्पादन के समय ध्यान रहे कि कुशलतापूर्वक अधिक गति से प्रयोजनानुसार सितव्यय में सुन्दर रूप से कार्य का सार्थक सम्पादन हो। खूब सोच-समझकर हितकर जानकर ही कार्यारम्भ करें और उसे पूरा

करके ही छोड़ें। हाँ, शीघ्रता में यदि परिस्थितिदश कोई कार्य आरम्भ हो जाय और क्रमिक चिन्तन से उसका परिणाम अहितकर जान पड़े तो उसे उसी क्षण छोड़ दें। जीवन-वापन सम्बन्धी कार्यों को द्विप्रहर तक करें तदुपरान्त भोजन का समय आता है। कार्यालयादि जगहों में काम करनेवाले को भी अल्पाहार का समय आता है।

कार्यक्षमता को सुदृढ़ रखने तथा विकास करने के लिये भोजन भी जीवन का आवश्यक अङ्ग है। जब खूब भूख लगे तभी भोजन करना चाहिये। लालच में पड़कर या किसी के दुराग्रह से आवश्यकता से अधिक भोजन हानिकारक है। भोजन की मात्रा तथा उसके गुण पर ध्यान रखना आवश्यक है। ऐसा या इतना भोजन नहीं करें जिससे आलस धर दबाये या कार्यक्षमता में कमी आ जाये। भोजन के पूर्व शरीर और मन की जो स्फूर्ति

रहती है भोजनोपरान्त भी उस स्फूर्ति में कमी नहीं आवे। सदाचार के पालन में जिस वस्तु या मात्रा से क्षति की सम्भावना है उसका व्यवहार न करें।

हाट-बाजार का बना अहितकर पदार्थ खाना न करें। उत्तेजक पदार्थ का व्यवहार नहीं करें।—

‘माछ, मांस खासने आर

प्याज, रसून भादक छाड़।’

अर्थात् माछ, मांस, प्याज, रसून और मादक द्रव्य आदि के प्रयोग से शरीर कोषों एवं रक्त-प्रवाह की क्षमता के कारण असामयिक अजातजनित आकुंचन-प्रसारण-क्रिया की अधिकता के फलस्वरूप शारीरिक शक्ति का ह्रास होने लगता है एवं आयु क्षीण हो जाती है। हाँ, यह बात मानने की है कि आपत्तिकाल में दवा के रूप में किसी उत्तेजक, मादक या

विषमय पदार्थ का भी प्रयोग किया जा सकता है, यह तो आपदधर्म है न कि सामान्य धर्म। ऐसे पदार्थ के प्रयोग से शारीरिक एवं मानसिक संतुलन विकृत हो जाता है, कार्यक्षमता नष्ट हो जाती है, भौतिक तथा आध्यात्मिक विकास मारा जाता है। शरीर और मन पर दुष्प्रवृत्तियों का आक्रमण और आधिपत्य हो जाता है। इस प्रकार सभी क्षेत्र में हमारी हानि होने लगती है और हम परिवार-परिवेश सहित विनष्ट हो जाते हैं। फलस्वरूप अपनी सम्पत्ति और संस्कृति सहित हमारे राष्ट्र का विनाश हो जाता है।

भोजन सामग्री तैयार करने और ग्रहण करने के क्रम में निम्न बातों पर ध्यान रखना चाहिये :—

भोजन के उपादान—अनाज आदि खूब पवित्र स्थिति में सुरक्षित रहे। साग-सब्जी आदि को उचित रूप से पवित्र करके ही उसका

व्यवहार करें। हाट-बाजार से लाया गया सामान पवित्र करके ही घर में पवित्र स्थान पर रहें। भोजन सम्बन्धी वर्तन-वासन एवं यन्त्रपाति बगैरह को उचित रीति से धोकर साफ करके ही प्रयोग में लाना चाहिये। भोजन बनाते समय माताओं को शरीर और मन से पवित्र, निर्द्वन्द्व, उत्कृष्ट और इष्टमुखी रहना चाहिये। पूर्णसदाचारयुक्त पवित्र एवं उच्छलभाव से इष्टदेव के निमित्त भोजन सामग्री तैयार करने की भावना से भोजन तैयार करें और इष्टदेव को भोग समर्पित करने के उपरान्त ही परिवार के अन्य लोगों में उसका वितरण करें।

भोजन करते समय इस बात पर ध्यान रहना चाहिये कि भोजन की जगह मिट्टी-जल से पोती हुई या जलासक्त और पवित्र हो। भोजन करनेवाले का हाथ-पाँव-मुख आदि जल से पवित्र किया हुआ हो और पवित्र आसन

पर बैठकर इष्टार्थभाव से प्रेमपूर्वक रुचि-
अनुकूल ताजा भोजन करें। भोजनक्रम में
थोड़ा-थोड़ा जल लेते चलें,—इससे पाचन-क्रिया
में सुविधा होती है।

हाट-बाजार, होटल आदि जगहों में या
अन्यत्र अनजाने बर्तन का उपयोग न करें।
फल दगैरह भी अच्छी तरह धोकर शुद्ध करके
ही व्यवहार करें। अधिक देर का ठंढा या बासी
पदार्थ व्यवहार नहीं करें। भोजन करके कुछ
देर विश्राम करें। पुनः नयी स्फूर्ति के साथ
अपने काम में लग जाय।

आवश्यकतानुसार जब कभी स्नान करें
तो सूखे कपड़े से शरीर को अच्छी तरह पोंछ
लें। गीले (भीगे) शरीर में तेल का प्रयोग
नहीं करें। जाड़े के समय सरसोतेल का
मालिश करके स्नान करना अच्छा है।

वस्त्र धारण करने में सतर्क रहना चाहिये।
स्वच्छ वस्त्र का प्रयोग आवश्यक है। हमारे

के व्यवहार के वस्त्र का प्रयोग नहीं करें।
साथ ही अपने वस्त्रों को भी अथ किसी को
व्यवहार के लिये नहीं दें। दूसरे के बिछावन
तथा चादर आदि का भी व्यवहार नहीं करें।

किसी से मिलते समय हाथ में हाथ नहीं
मिलावें बल्कि अलग से ही शिष्टाचार के साथ
दोनों हाथ जोड़कर अभ्यर्थना करें। हुककर
या भूमिष्ठ होकर साष्टांग या षष्ठांग दण्ड-
प्रणाम करना ठीक है किन्तु जल्द किसी का
चरण-स्पर्श नहीं करें क्योंकि स्पर्शदोष के कारण
जीमारियों के संक्रमण की सम्भावना रहती है।

नाक, कान आँख, मुख आदि में, डँगली
प्रयोग के बाद शीघ्र ही जल से उन्हें पवित्र
कर लें। धौवादि क्रिया से निवृत्त होने पर
बचेष्ट जल से परिशुद्ध हो लें।

किसी से बात करते समय या भोजन
करते समय इतना निकट से आमने-सामने नहीं
रहें जिससे एक-दूसरे के स्वाँस की आहट लग
सके। कभी भी खड़े-खड़े पाखाना-प्रस्राव नहीं

करें; ऐसा करने से शरीर और वस्त्र अशुद्ध हो जाते हैं, शरीर के अवयव ढीले और शिथिल हो जाते हैं तथा बीमारियों के संक्रमण का भय रहता है।

इष्टानुराग के साथ तप-ध्यान, आत्मोन्नयन का चिन्तन और व्यवहार—ये सभी 'याजन' के अङ्ग हैं। हमारे इष्टानुग व्यवहार, वाणी और सेवा से अन्य लोगों को उत्सुखीन-उन्नति की जो प्रेरणा मिलती है, वही 'याजन' है। हमें सतत, परिवेश की इष्टानुग सेवा का भी ध्यान रखना चाहिये। ऐसा भी अवसर आता है जब हमें और हमारे पड़ोसी को एकसाथ ही हाट-बाजार का काम उपस्थित हो जाता है। ऐसे अवसर पर आवश्यकतानुसार एक ही व्यक्ति कई व्यक्तियों के बदले भी उनका काम हाट-बाजार से कर लावे तो इससे उन्हें समय की बचत के कारण अन्य काम को सम्पादन करने का अवसर मिल जाता है, आवागमन के मार्ग व्यय की बचत होती है, समाज को

कार्यक्षमता में वृद्धि होती है, आय बढ़ जाती है, व्यय कम हो जाता है और पारस्परिक सद्भावना भी बढ़ जाती है। इस प्रकार पारस्परिक सहयोगिता के फलस्वरूप समाज सम्पन्नता की ओर अग्रसर होने लगता है एवं किसी के पास अभाव-अभियोग का अवसर नहीं रहता है। परिणामतः ऐसे समाज में स्वर्गराज्य का आनन्द मिलना सम्भव हो जाता है।

स्वास्थ्य-रक्षा और सौन्दर्य-वृद्धि को ध्यान में रखते हुए प्रत्येक माता-पिता (स्त्री-पुरुष) को ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना आवश्यक है। अनावश्यक एक-दूसरे के निकट मात्र काम-प्रवृत्ति-वश नहीं मिलें। एक-दूसरे की सेवा और परिपोषण में कमी नहीं होनी चाहिये किन्तु जबतक स्वस्थ और उत्सुखी भाव नहीं रहे तबतक दाम्पत्य-मिलन हानिकर है। सन्तानलाभ की इच्छा जगने पर दम्पति को पूर्व ही निर्धारित कर लेना चाहिये कि उन्हें

कैसी सन्तान चाहिये। पुनः दोनों समानभाव से तदनुकूल गुणों का आहरण करें। समानभाव से सम्पन्न गुणों से आविष्ट होने के बाद शुभ मुहूर्त में एकमुखी भाव से उपगत होने से तद्गुण सम्पन्न आत्मा उनकी सन्तान के रूप में उनकी सेवा के लिये उपस्थित हो जाती है। इस नियम के पालन से समाज में सद्गुण-सम्पन्न, सबल, दीर्घजीवी सन्तान की संख्या में वृद्धि होती है, समाज से ईर्ष्या द्वेष मिट जाते हैं और ऐसे सुदृढ़ समाज से सबल राष्ट्र का निर्माण होता है।

सुषुप्ति होने के पूर्व ५-६ बजे तक दैनिक कार्य से निवृत्त होकर शरीर-मन को पवित्र करके सन्ध्याकालीन इष्ट-अर्चना में समवेत रूप से लग जाय। इस क्रम में याजन के साथ-साथ पारस्परिक विचारों का विनिमय भी करें। इससे पारस्परिक समस्याओं के समाधान का अवसर मिलता है।

सुबह-शाम—दोनों बेला नियमित ढंग से

सद्गुरु की आराधना आवश्यक है। याजन, याजन पर विशेष ध्यान रहना चाहिये। इस क्रम में श्रीश्रीठाकुर प्रदर्शित आत्मानुसंहित पूर्वप्रार्थना समवेत रूप से करना चाहिये। सन्ध्याकाल विशेषतः समवेत प्रार्थना के क्रम में हम अपने दिनभर के कार्यों की समीक्षा भी कर सकते हैं और यदि कोई उल्लङ्घन या कठिन समस्या उपस्थित हो जाय तो पारस्परिक विचार-विमर्श के द्वारा श्रीश्रीठाकुरजी के विधि-विधान के अनुरूप हम समाधान भी निकाल सकते हैं।

सन्ध्य-अर्चना के बाद श्रीश्रीठाकुरजी के साहित्य का अध्ययन भी आवश्यक है। इससे ज्ञान-वृद्धि, याजनकर्म और समस्या-समाधान में सहारा मिलता है। इसके साथ-साथ बच्चों के अध्ययन कार्य में भी सहयोग देना चाहिये। ६-३० (साढ़े नौ) बजे रात्रि तक इस कार्य को सम्पन्न कर लेना चाहिये।

रात्रि में स्वरूप भोजन करें। कुछ काल

धूमफिरकर १०-२० (साढ़ेदस) बजे तक विष्ठावन पर जाय। कुछकाल जप-ध्यान के साथ आत्म-विश्लेषण करते हुए भावी कार्य की योजना पर विचार करें। तदुपरान्त इष्ट-स्मरण करते हुए शान्तिपूर्वक सो जाय। भोजन की मात्रा इतनी हो कि निशाकाल तथा ऊषाकाल में नाम-ध्यान करने में किसी प्रकार की असुविधा नहीं होने पावे। अधिक तेल, घी, चर्बी और मशाले आदि का प्रयोग नहीं करें। इस प्रकार कार्य-सम्पादन करने से कार्य-क्षमता बढ़ती है और जीवन सुखी होता है, इष्टानुराग बढ़ता है, आत्मबल तथा मानसिक शक्ति का विकास होता है। इस प्रकार अच्युत, इष्ट-निष्ठा के प्रभाव से इष्ट-प्रेम और ज्ञान की अभिवृद्धि होती है क्योंकि इष्टानुरक्ति के अनुपात में ही हम उनकी कृपा के अधिकारी होते हैं। इस क्रम में भगवान् श्रीकृष्ण की वाणी है,—

ये यथा मां प्रपद्यन्ते

तांस्तथैव भजाम्यहम् ।

(श्रीमद्भगवद्गीता । ४।११॥)

और भी—कौन्तेय प्रतिजानीहि,

त मे भक्तः प्रणश्यति । गीता ९।३१॥

अर्थात् जो मुझे जैसी सेवा करता, मैं भी उसे वैसा ही फल प्रदान करता हूँ। पुनः हे कुन्तीपुत्र, यह जान लो कि मेरे भक्त का कभी विनाश नहीं होता।

अपने इष्टदेवता की प्रीति के लिये ही नियमित रूप से इष्टभृति करनी चाहिये तथा इष्टभृति की राशि में क्रमिक वृद्धि के लिये अपनी क्षमता में कमी नहीं करनी चाहिये इस क्रम में श्रीश्रीठाकुरजी की वाणी है :—

दैनन्दिन आहार येसन

इष्टभृति राखिस्, तेसन,

एइटेइ जानिस्, नेहात्, कम,

एरओ कमे कि नय विषम ?

पारले कमे यासइ ना,

कपट ब्रती ह'सइ ना । अनु० १

तात्पर्य यह कि—अपने दैनन्दिन आहारके अनुपात में इष्टभृति का अर्घ्य निवेदन करना चाहिये, यह

भी निम्नतम है और इससे कम तो और भी विषम है जो नहीं होना चाहिये। क्षमता रहने पर कभी भी इष्टभृति के अर्घ्य में कमी नहीं करनी चाहिये क्योंकि ऐसा करना कपट है। अतः कपटी नहीं होना चाहिये। आहार के अनुरूप तथा उससे अधिक इष्टभृति-अर्घ्य में वृद्धि करते रहने से उत्तरोत्तर सामर्थ्य की भी वृद्धि होती रहती है। इसीलिये इसे सामर्थ्य योग भी कहा जाता है।

अपने जीवन में उन्नति के लिये स्वेच्छा से स्वस्त्ययनी-व्रत ग्रहण कर निष्ठापूर्वक विधिवत् उसके नियमों का पालन करना चाहिये।

प्रत्येक सत्संगी का कर्त्तव्य है कि अपने परिवार-परिवेश एवं समाज के लोगों को अपने याजन के द्वारा एवं इष्टार्थी सेवा से इष्ट से युक्त कराकर अपने क्षेत्र-परिसर का विस्तार करते चले। इष्ट-सम्बन्धी चर्चा आनन्ददायक,

ज्ञानवद्ध के और भक्ति-परक है। स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है :—

नास्ति बुद्धिर्युक्तस्य न चायुक्तस्य भावना ।
न चाभावयतः नास्ति शान्तिरस्य कुतः सुखम् ॥

गीता २।६६

और श्रीश्रीठाकुर ने भी इस क्रम में कहा है :

“आदर्श अयुक्त व्यक्ति सरल होलेओ बेकुव कम-मस्तिष्क हुये थाके,—तादेर बुद्धिमत्तार गोडामि थाकलेओ मनगड़ा बेकुवी बोधेर तरजमा दिये कूटभंगीते आलेया स्वच्छताय दुनियार या किछुके अनुवाद करे थाके।”

—सत्यानुसरण, पृ० ६६

इष्टचर्चा से लाभ के विषय में श्रीकृष्ण भगवान् की वाणी है :—

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम् ।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च ॥६॥
तेषां सत्तयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥ १० ॥
तेषामेवानुकम्पार्थं अहं अज्ञानजं तमः ।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वताः ॥११॥

गीता १० म।

श्रीश्रीठाकुरजी ने स्वास्थ्य-पालन के सम्बन्ध में कतिपय नियम आंग्ल भाषा में लिपिवद्ध करा रखा है जो दैनिक जीवन के लिए अत्यन्त उपयोगी है।

1. Rise very early in the morning and go early to bed at night and perform your daily offerings of prayer to your Lord just at dawn and sunset.

2. Be regularly irregular about taking food, sleep and wearing clothes.

3. Change the diet frequently.

4. Never take food before you are hungry. Take such quantity of food as will make no difference in your mental attitude after the meal. It must remain the same as it was before meal.

5. Follow monkey's nature in taking raw fruits. Never cut them but eat them raw with the teeth.

6. Never take too much of sweets and ghee.

7. Follow nature and not the artificial methods for the health of your body.

(श्रीश्रीठाकुर अनुकूलचन्द्र, द्वितीय खण्ड १०८)

प्रणेत—श्रीब्रजगोपाल दत्त राय,

एम०ए०बी०एल०)

श्रीश्रीठाकुरजी की कुछ वाणियाँ :—

१. "ईश्वर जान

शयतान के संशोधन करते,—

उन्नीत करते सत्-ए,—उपचये,

शयतान चाय ईश्वरके अवलुप्त करते—मरने,

निःस्व करते—निःशेषे।"

—शाश्वती-३।२१।१४०

२. "इष्टभृति ह'ते ये वा या'रा
तोमाके विरत क'रवें
ठीक जेनो—
सै बा ता'रा
तोमार शत्रु ।"

—धृति-विधायना वा० १४६ शेष

३. "कापुरुष सेह,—
वे, सत्य कोथाय वा की—
ता बीझ,
अथच, ग्रहण करे ना ता'
वा चलेओ ना तेमन ।"

—आचार चर्या-१ खण्ड

४. "प्रत्याशा व प्रवृत्ति ममता
प्रिय के अनुभव व उपभोग क'रते
दिते चाय ना ।"

—आचार चर्या-१ खण्ड

५. "यारा पेये खुशी,
क'रे आत्म-प्रसाद लाभ करे ना,
तादेर किन्तु श्रेय-पन्था संकीर्ण ।"

—आचार चर्या-१ वा० ४२० ॥

"वन्दे पुरुषोत्तमम् !"